SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

बघेलखण्ड का लोकजीवनः जनजातीय लोक परंपराए एवं लोक नृत्य

अनिल कुमार शुक्ला, शोधार्थी, लोकशिक्षा एवं जनसंचार विभाग
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना, मध्यप्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
अनिल कुमार शुक्ला

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 22/05/2023
Revised on : -----
Accepted on : 30/05/2023
Plagiarism : 00% on 22/05/2023

शोध सार

बघेलखण्ड एक प्राचीन सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र है जो कि भारत के मध्यप्रदेश राज्य के एक भाग के रूप में जाना जाता है। सदियों पहले यह क्षेत्र जितना संपन्न और प्रसिद्ध था आधुनिक समय में वह उतना ही पिछड़ता गया। यहां का जनजातीय लोकजीवन काफी विविधता लिए हुए हैं। बघेलखण्ड के आदिवासी लोकजीवन में कई प्रकार की विशेषताएं और संस्कृति एवं परंपराएं सदियों से आज तक विद्यमान है जो उसकी समृद्ध विरासत को प्रदर्शित करती हैं। प्रत्येक सांस्कृतिक क्षेत्र अर्थात भू–भाग का एक अलग जीवंत लोकजीवन, साहित्य, संस्कृति, इतिहास, कला, बोली और परिवेश है। मध्यप्रदेश में 5 लोक संस्कृतियों का समावेशी संसार है, इनमें एक बघेलखण्ड भी है। बघेलखंड की लोक संस्कृति उच्च वर्गीय लोक संस्कृति तथा जनवादी लोक संस्कृति के रूप में मुख्यतः पाई जाती है। यहां की जनवादी संस्कृति में आदिम संस्कृति के तत्व पर्याप्त मात्रा में परिलक्षित होते हैं, –गुदना कला, यहां पुरातन काल से विद्वान है। स्त्रियां अपने अंगों पर मछली, कमल, तितली, मोर, चिड़िया, फूल पत्ती, राधा कृष्ण, सीताराम आदि अंकित कराती हैं। बघेलखंड के आदिवासी अंचल में विभिन्न अवसरों पर विविध प्रकार के लोकनृत्य एवं सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराएं प्रचलित है। यह क्षेत्र पर्याप्त आर्थिक संसाधनों से परिपूर्ण है फिर भी यह अत्यंत पिछड़ा है इसलिए इस क्षेत्र के लोग अलग बघेलखण्ड राज्य की मांग लम्बे समय से करते आ रहे हैं।

मुख्य शब्द

बघेलखण्ड, जनजातियां, आदिवासी, लोकजीवन, लोक नृत्य, लोककला.

बघेलखण्ड का परिचय

बघेलखण्ड एक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक स्थल

है, बघेलखंड का इतिहास अति प्राचीन और गौरवान्वित करने वाला रहा है। यहां पाषाण काल के चित्र तथा पत्थर के हथियारों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। तेरहवीं शताब्दी में इस क्षेत्र पर बघेल राजपूतों का आधिपत्य हुआ, उसके बाद से ही इस क्षेत्र को बघेलखण्ड के रूप में ख्याति मिली। बघेलखण्ड के एक तरफ़ उत्तर भाग में तमस नदी का मंथर प्रवाह यहाँ के कण्ठों को प्लवित करता है तो दूसरी तरफ़ नर्मदा और सोन के उद्‌गम स्थल हैं। एक तरफ़ कैमोर और दूसरी तरफ़ से मैकल पर्वत बघेलखण्ड की धरती को आरक्षित किये हैं। मैकल पर्वत में आदिम जातियों का निरन्तर निवास रहा है। यहाँ के घनी चट्टानों के बीच प्राचीन प्रागैतिहासिक माड़ो की गुफाएँ हैं, जहाँ कभी आदिम मानव का निवास था।

बघेलखण्ड में जनजातियों की बहुलता है। इसमें कोल और गोण्ड जनजाति समूचे बघेलखण्ड में निवास करती हैं। कोल और गोण्ड भारतवर्ष की प्राचीनतम आदिम जातियों में से है। आदिम और लोक संस्कृति का जिस तरह का समागम बघेलखण्ड की भूमि पर मिलता है, उस तरह का दृश्य किसी और अंचल में नहीं दिखाई देता। 13 हज़ार वर्ग किलोमीटर में प्रसरित बघेलखण्ड की धरती और प्रकृति में वहाँ के लोगों की एक विशिष्ट जीवनशैली और संस्कृति समा गयी है, जिनका प्रभाव यहाँ के लोक नृत्य गीत–संगीत परम्परा में बहुत गहरे से और स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है।

बघेल राजपूतों के नाम पर इस भू भाग का नामकरण हुआ। बघेल राजपूतों के उदय के साथ ही इस पूरे क्षेत्र को रीवा राज्य में मिला दिया गया। जब राज्य ऋण ग्रस्त हो गया तब 1875 में ब्रिटिश इण्डिया एजेन्सी ने प्रशासन अपने हाथ ले लिया था। राज्य की काया पलट हो गयी थी, राज–काज में प्रयोग होती आ रही रिमही हटी, फारसी काबिज हो गयी रीमा रीवां हो गया, किन्तु अंग्रेजी में आरईडब्लूए बोल और लिख रही थी। उच्चारण तो रीवा होना चाहिए पर होता आया रहा रीवां। देश आजाद हुआ 1947 में भारतीय स्वतंत्रता के समय बघेलखण्ड –विंध्य प्रदेश का पूर्वी अंश बना। 31 मार्च 1948 को रीवा महाराजा मार्तण्ड सिंह ने रीवा राज्य को भारत संघ में मिला लेने वाले मसौदे में स्वीकृति स्वरूप हस्ताक्षर कर दिए। 343 वर्षीय मुल्क बघेलखण्ड से रीवा सी० आई० लुप्त हो गया।

वर्तमान में बघेलखंड मध्य प्रदेश राज्य के उत्तर–पूर्वी ओर स्थित है। इसमें मध्य प्रदेश के दो संभाग और 8 जिले रीवा, सतना, शहडोल, उमरिया, अनूपपुर, सीधी, सिंगरौली और डिण्डौरी क्षेत्र सम्मिलित है।

बघेलखण्ड में आदिवासियों की स्थिति

- मध्यप्रदेश शासन के जनजातीय कार्य विभाग के आंकडों के मुताबिक मध्यप्रदेश के कुल 52 जिलों में से 20 जिलों के 89 विकासखंड आदिवासी विकासखंड घोषित हैं, जिनमें से बघेलखण्ड के कुल 8 जिलों में से 5 जिलों के 17 विकासखंड अनुसूचित क्षेत्र आदेश–2003 के अनुसार आदिवासी विकासखंड के अंतर्गत आते हैं।
- मध्यप्रदेश में आदिवासियों की कुल जनसंख्या 1 करोड़ 53 लाख 16 हजार 784 है जिसमें से 77 लाख 19 हजार 404 पुरुष और 75 लाख 97 हजार 380 महिलाएं हैं, वहीं बघेलखण्ड में आदिवासियों की कुल जनसंख्या 29 लाख 20 हजार 285 है जिसमें 14 लाख 72 हजार 798 पुरुष एवं 14 लाख 47 हजार 487 महिलाएं हैं।
- वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार मध्यप्रदेश में आदिवासियों की कुल साक्षरता दर 50.55 प्रतिशत है जिसमें से 59.55 प्रतिशत पुरुष और 41.47 महिलाएं शिक्षित हैं। वहीं बघेलखंड में आदिवासियों की साक्षरता दर 54. 19 प्रतिशत है, जिनमें से 64 फीसदी पुरुष और 44.25 फीसदी महिलाएं साक्षर हैं।
- मध्यप्रदेश का कुल क्षेत्रफल 3 लाख 8 हजार 252 वर्ग किमी है, जिसमें से करीब 13 हजार वर्ग किमी का क्षेत्र बघेलखण्ड के अंतर्गत आता है।

बघेलखण्ड के आदिवासी विकासखंड

क्रमांक	आदिवासी विकासखंड	जिले का नाम
01	डिंडौरी मेहदवानी	डिण्डौरी
02	करंजिया	
03	अमरपुर	
04	शहपुरा	
05	समनापुर	
06	बजाग	
07	डिण्डौरी	
08	सोहागपुर	शहडोल
09	बुढ़ार	
10	गोहपारू	
11	जयसिंह नगर	
12	अनूपपुर	अनूपपुर
13	जैतहरी	
14	कोतमा	
15	पुष्पराजगढ़	
16	पाली	उमरिया
17	कुसमी	सीधी

बघेली 'लोकजीवन'

बघेली साहित्य ने लोकभाषा में "लोकजीवन" का मर्म प्रस्तुत किया है। लोक नृत्य व गीतों में ही लोकजीवन की सहजता छिपी हुई है। इसके बिना आमजन मानस के स्वाभाविक और सहज जीवन की कल्पना भी नही की जा सकती है। जनजातीय लोक साहित्य में सदियों के लोकजीवन का समस्त मर्म निहित होता है। नए समय में लोक साहित्य के दस्तावेजीकरण की ओर कई लेखकों और शोधार्थियों का ध्यान गया। इससे एक ओर जनजातीय लोक साहित्य का संरक्षण हुआ, वहीं दूसरी ओर एक क्षेत्र के लोक साहित्य का अन्य क्षेत्रों तक तीव्रता से विस्तार हुआ। रंगमंच ने भी लोक साहित्य और लोक कलाओं के विस्तार में अहम भूमिका निभाई है।

विकसित राष्ट्रों की अपनी संस्कृतियों के वर्चस्ववादी अभियान के तहत वैश्वीकरण और बाजारवाद के शक्तिशाली जाल में पूरी दुनिया को जकड़कर स्थानीयता (लोकल) से बेदखल करने के षड्यंत्र को, संवेदनशील प्रबुद्ध व्यक्ति भली–भाँति समझने लगा है इसीलिए आज पुनः 'लोक' से जुड़ी अस्मिताओं की पहचान और संरक्षण के सवाल उठने लगे हैं। लोक साहित्य में हमारी संस्कृति अपने खालिस रूप में नजर आती है। लोककंठ से प्रस्फुटित यह लोक साहित्य, लोक हृदय, लोक चेतना, लोक संवेदना का परिचायक साहित्य है।

जनजातीय लोक परंपरा

आधुनिक युग के ग्लैमर से दूर, आधुनिकता की कृत्रिम और जटिल व्यवहार शैली और आज के भौतिक वैभव एवं भोगवादी जीवन से अपरिचित एकांत और शांत प्रकृति की गोद में रहने वाली जनजातियों के लोग आज भी अपनी परंपराओं से युक्त अपनी मर्यादा और संस्कारों से पुष्ट सामाजिकता का परिचय देते हैं। इनकी अपनी विशेषताएं हैं इनके अपने संस्कार हैं तथा इनकी अपनी जीवन शैली है। बघेलखण्ड में प्रमुख रूप से गोंड़, बैगा, कोल, पनिका और अगरिया जनजातियां निवास करती हैं। इन जनजातियों की धार्मिक परंपराएं, सामाजिक रीति–रिवाज शताब्दियों से चली आ रही सांस्कृतिक धरोहर हैं, जो अब शहरीकरण की आड़ में विलुप्त सी होती जा रही हैं।

यहां के गोड़ों की दिनचर्या जंगल से लकड़ी बांस काटना, मछली पकड़ना, शिकार करना, चिरौंजी, महुआ, हर्रा बहेरा, करौंदा, गूलर, जामुन आदि फलों एवं तेंदू पत्तों को इकट्ठा करना है। यह लोग बांस की टोकरी और डलिया आज भी बनाते हैं। इनकी बस्ती में मकानों की संख्या कम होती है, वनोपज पर निर्भर रहने के साथ यह लोग कृषि कार्य भी करते हैं। शिकार के समय गोड़ स्त्रियां भी बाहर जाती हैं, शिकार के समय यह लोग शहद तथा गोंद का भी संग्रह करते हैं। इनमें कुछ लोग पशु पालन भी करते हैं, महुआ, खजूर, इमली, ताड़ के फलों का प्रयोग खाने के साथ–साथ शराब बनाने आदि के लिए किया जाता है।

इनके यहां देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशु बलि की भी प्रथा है, गोंड़ जनजाति के लोगों के बड़ा देव तथा घमासान इनके प्रमुख लोक देवता हैं। शीतला, अंबिका, वैराई, लोहापुर माता, बड़ा देव, ठाकुर देव, पनिहारी आदि इनके देवी देवता हैं, भूत प्रेत में इनका विश्वास है। आभूषण के नाम पर मूंगा तथा नकली मोतियों के आभूषण का प्रचलन है, गोंड जनजाति में बहुविवाह तथा विधवा विवाह की प्रथा है। बैगा स्त्रियां छल्ले, हंसूली तथा हाथी दांत की चूड़ियां पहनती हैं। इनके मकान घास फूस के बने होते हैं और दीवार को मिट्टी से लीपा जाता है। इस क्षेत्र में अगरिया जनजाति के लोग आग में लोटा गलाने का काम करते हैं, बघेलखण्ड की राजधानी रहे रीवा जिले में करियाझार नामक स्थान में लगभग पूरी आबादी जनजातियों की है। यह स्थान एक द्वीप के समान है।

इस जनजातीय समाज में नृत्य, संगीत, गायन और वादन का विशेष महत्व है। इससे उनका मनोरंजन तो होता ही है साथ ही वे अपने देवता को प्रसन्न करने के लिए ऐसे आयोजन करते हैं। इनके वाद्य यंत्र अनूठे होते हैं, नगाड़े, ढोल, ठंकी इनके प्रमुख वाद्य यंत्र हैं। बांसुरी, पायल और घुंघरू का भी कहीं–कहीं प्रचलन है। बैगा, गोड़ और कोल जनजाति में प्रचलित शैला, कर्मा, बिरहा, अहीर नृत्य तथा कोलदहा प्रसिद्ध लोक नृत्य है। यह नृत्य रात में होते हैं यह लोग खुद की बनाई हुई कच्चे महुआ की शराब पीकर तथा आग जलाकर बाड़ों में रात भर नृत्य करते हैं। बैगा जनजाति में प्रचलित पगधौनी एक विशेष प्रकार की नृत्य शैली है।

जनजातीय 'लोक नृत्य'

लोक नृत्य प्रकृति का वरदान है, जिस भूभाग की जैसी प्राकृतिक छटा होती है, वहां लोकनृत्य भी उसी के अनुरूप पाए जाते हैं। लोक नृत्यों की उर्वर भूमि ग्रामीण अंचल ही होता है, इनके आयोजन के लिए कोई रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती है। व्यक्ति के मन में जब उमंग आती है तो वह विभिन्न शैलियों में अपनी लोक संस्कृति के अनुरूप नृत्य करने लगता है। लोक नृत्य से व्यक्ति को वास्तविक आनंद की प्राप्ति होती है। लोक नृत्य में सम्मिलित व्यक्तियों के मस्तिष्क एवं हृदय भी खुले होते हैं, जब लोक नृत्य का आयोजन होता है तो बिना किसी भेदभाव या संकुचित भावनाओं से लोग शामिल होते हैं। ऊंच नीच, जात पात जैसी भावनाओं के लिए लोक नृत्य में कोई स्थान नहीं होता है। लोक नृत्य लोगों के हृदय में एक दूसरे के प्रति स्नेह जागृत करता है।

1. **बघेली करमाः** बघेलखंड में निवास करने वाली गोड़ जनजाति के लोक नृत्य को 'बघेली करमा' कहते हैं। बघेलखंड में भी करमा नृत्य की पृष्ठभूमि वही है जो अन्य स्थानों में है। बघेली करमा के स्वरूप एवं रचना में अन्य करमा शैलियों की अपेक्षा भिन्नता है। यहां के करमा में नर्तकगण दो दलों में पहले आमने–सामने खड़े हो जाते हैं, मांदर पर थाप पड़ती है और एक दल करमा गीत गाता है तथा दूसरा दल उसे दोहराता है, कुछ देर तक गायन और वादन का यही क्रम चलता रहता है। फिर मांदर पर पुनः एक लंबी थाप पड़ती है और करमा नृत्य के लिए पद संचालन प्रारंभ हो जाता है। बघेली करमा में नर्तकों के घुटने वक्षस्थल की ओर आते हैं, मानो घुटने वक्षस्थल को छूने का प्रयास करते हैं। पैरों को उठाकर झुलाते हुए एक बार दाएं और एक बार बाएं ओर रखकर कमर में लोंच और सिर को झुकाकर नर्तक नाचते हैं। नृत्य की आवृत्ति होती है। घेरे में नाचने के बाद नर्तक अपने आमने–सामने पैरों को झुलाते हुए आगे बढ़ते हैं और पीछे हटते हैं ऐसा लगता है जैसे एक दूसरे के अंगूठे को छूने की होड़ हो रही हो। बघेली करमा दो प्रकार से नाचा जाता है एक कर्मा झूल और दूसरा करमा लहक। इस कर्मा में भी स्त्री–पुरुष समान रुप में भाग लेते हैं। नृत्य के साथ करमा गीत प्रमुख रूप से गाए जाते हैं, नर्तक गीत गाते हुए बीच–बीच में आवाज लगाते हैं, कभी–कभी सवाल–जवाब के गीत भी गाए जाते हैं, करमा नृत्य के 'मादर और

टिमकी' प्रमुख वाद्य यंत्र हैं, यह नृत्य गीत प्रधान है।

2. **सैला नृत्यः** सैल या शैल का अर्थ है पर्वत। विंध्य एवं सतपुड़ा वन प्रांतों में निवास करने वाली गोंड़ आदिम जाति का यह वीर नृत्य है। पर्वतीय परिवेश में जीवन व्यतीत करते समय गोंड जनजाति को पहाड़ों में व्याप्त अनेक छोटी–बड़ी समस्याओं से जूझना पड़ता है। वह इन समस्याओं का वीरता पूर्वक सामना करते हैं, वीरता के ऐसे ही गुणों की छाप सैला नृत्य में अंतर्निहित हैं। सैला नृत्य पर्वतीय नृत्य है, पर्वतीय होने के कारण इस नृत्य में पहाड़ जैसा साहस, बल, ऊर्जा एवं वीरता की स्पष्ट झलक मिलती है। इसके पद संचलन, हाथों की वीरोचित क्रियाएं तथा पैंतरे पूर्ण रूप से वीरता के सूचक हैं। तभी तो सैला नर्तकगण हाथों में नृत्य के समय काठ के बने अस्त्र–शस्त्र जैसे लाठी, भाला, तलवार, बंदूक एवं लंबे–लंबे डंडे आदि लेकर युद्ध की विधाओं का प्रदर्शन करते हुए नृत्य करते हैं। यह केवल पुरुषों द्वारा ही किया जाता है, अतः इससे भी इसके वीरनृत्य होने की पुष्टि होती है। एक हाथ में लकड़ी के बने अस्त्र–शस्त्र तथा दूसरे हाथ में मोरछल का मूठा नृत्य की शोभा बढ़ाते हैं। ग्रामीण बोली में बैलगाड़ी की जुआड़ी में फंदे की गर्दन के अगल–बगल जो डंडे बांधे जाते हैं उन्हें 'सैला' कहते हैं। सैला नृत्य का समय ठंड का मौसम अर्थात् कार्तिक से फागुन तक होता है, जब धान, कोदो, कुटकी आदि की फसल कटकर घरों में आ जाती है तब गोंड़ जनजाति का 'गिरदा' उत्सव प्रारंभ होता है। गोंड़ संस्कृति का यह महत्वपूर्ण उत्सव है। उल्लेखनीय है कि रीवा नरेश महाराज गुलाब सिंह ने गोंड़ों को 'सिंह' उपाधि दी थी।

3. **रीना नृत्यः** मध्यप्रदेश में विंध्याचल और सतपुड़ा पर्वत के पूर्वी भाग में निवास करने वाली गोंड़ आदिम जनजाति का 'रीना नृत्य' है। जिस प्रकार गोंड़ जनजाति के पुरुषों में 'सैला नृत्य' का प्रचलन है, उसी प्रकार इनके स्त्री समाज में 'रीना नृत्य' की परंपरा है। रीना नृत्य का समय भी ठंड ऋतु है। वास्तव में सैला और रीना ने दोनों नृत्यों की एक जोड़ी है, गांव में जब पुरुष सैला नृत्य करते हैं तो उसी के आसपास महिलाएं 'रीना नृत्य' करती हैं। सैला नृत्य के समान रीना नृत्य में भी गरदा उत्सव की परंपरा है। स्त्रियों का दल भी एक गांव से दूसरे गांव में 'रीना नृत्य' करने जाता है। जहां गांव की महिलाओं द्वारा उनका पारंपरिक स्वागत किया जाता है। खान–पान, सांस्कृतिक आदान–प्रदान, नृत्य का सम्मिलित आयोजन एवं भावभीनी विदाई आदि उसी तरह होती है जैसे कि सैला नृत्य की। अधिकतर दोनों नर्तक दल गांव में साथ ही साथ जाते हैं। रीना नृत्य में वाद्य नहीं बनाए जाते हैं, महिलाएं थपोड़ा यानि ताली बजाकर उसी की लय ताल में नृत्य करती हैं। 'रीना नृत्य' गोल घेरे अर्ध घेरे या पंक्ति में किया जाता है, कभी–कभी महिलाएं दो दल बनाकर रीना नाचती हैं, यह गीत प्रधान होता है। केवल पैरों और घुटनों का संचालन ही इस नृत्य की विशेषता है।

4. **दशराहा नृत्यः** यह बैगा आदिवासियों का सामाजिक नृत्य है, दशराहा की कोई विशेष पारंपरिक रचना नहीं है, बैगा जनजाति में प्रचलित विभिन्न लोक नृत्यों को ही 'दशराहा नृत्य' के नाम से जाना जाता है। दशराहा नृत्य वास्तव में एक वार्षिक उत्सव के रूप में आयोजित होता है। बैगा जन अपना आत्मीय व्यवहार कायम करने के लिए वर्ष में एक बार अपने गांव से दूसरे गांव में जाते हैं, वहां उनका स्वागत–सत्कार एवं सम्मान किया जाता है। पुरुषों एवं महिलाओं के नर्तक दल के दूसरे गांव में पहुंचने पर सम्मिलित रूप से विभिन्न सामाजिक रस्मों का परिपालन किया जाता है। दशराहा नृत्य प्रमुख रूप से रस्मों का नृत्य है, इसमें नृत्य का महत्व कम है और रीति–रिवाजों और परंपराओं का महत्व अधिक है। दशराहा नृत्य बैगा युवाओं द्वारा नाचा जाता है, जिसका सिलसिला प्रतिवर्ष कुमार पंचमी से प्रारंभ होता है और कार्तिक अमावस्या तक जारी रहता है। बैगा जाति में मान्यता है कि वर्षा ऋतु के बाद दशराहा नृत्य वर्ष पर्यंत तक नृत्य करने हेतु द्वार खोलता है, दशराहा नृत्य का संबंध दशराहा पर्व से नहीं है।

5. **भीमा नृत्यः** बघेलखंड के शहडोल जिले में 'भीमा' या 'भिम्मा' जनजाति के द्वारा 'भीमा नृत्य' किया जाता है। भीमा जनजाति का संपूर्ण जीवन लोक संगीत पर ही आधारित होता है। भीमा नृत्य ही इनकी पैतृक संपत्ति है, इस नृत्य में परिवार के छोटे बड़े सभी सदस्य अपने मधुर मुस्कान के साथ सम्मिलित होते हैं। नृत्य के समय भीमा युवक तूमा बजाते हैं, जिसका नाम 'किंदरा' रखा है। भीमा नृत्य 'किंदरा' की लय ताल और गीतों की धुनों पर चलता है, गीत की आधी पंक्ति पुरुष गाता है और आधी पंक्ति स्त्रियां गाकर नृत्य करती हैं। नृत्य करते समय स्त्रियां पुरुषों से आगे रहती हैं तथा पुरुष इनके पीछे रहकर 'किंदरा' बजाते हुए अपनी जगह पर नाचते हैं, चूंकि इनका नृत्य

व्यवसायपरक होता है अतः लोगों को आकर्षित करने और उनका भरपूर मनोरंजन करने के लिए नृत्य के साथ गाए जाने वाले लोकगीत अत्यंत श्रृंगारिक होते हैं।

6. **कोलदहकी नृत्यः** यह नृत्य कोल जनजाति का ही सामाजिक एवं जातीय नृत्य है। इसे 'कोलहाई नाच' भी कहते हैं, वैसे समाज या परिवार के सभी शुभ अवसरों पर कोलदहकी नृत्य का आयोजन होता है किंतु बेटा या बेटी के विवाह के बाद गांव घर में जब समधी का प्रथम आगमन होता है तो उनके सत्कार में कोलदहकी नृत्य का आयोजन अत्यंत आवश्यक होता है। समधी के लिए आसन लगाया जाता है, पुरुष वर्ग ढोलक, मंजीरा, झांझ और नगरिया लेकर बैठता है। सबसे पहले सभी वाद्यों की मिली–जुली झंकार बजाई जाती है, यही स्त्री वर्ग के लिए चुनौतीपूर्ण आमंत्रण होता है। झंकार के बाद पुरुष वर्ग टेक भरता है जो काफी झूलावदार होता है। बहुत देर तक टेक भरी जाती है वाद्यों की एक जोरदार तोड़ के साथ टेक झटके से बंद होती है। इसी तोड़ के साथ कोलनियां चुनौती स्वीकार करते हुए आ जाती हैं फिर शुरू होता है कोलदहकी नृत्य और गीत का हंगामी मुकाबला। कोलनियों के चेहरे पर हाथ पौन हाथ लंबा घूंघट होता है, महिलाएं नाचती हैं और गाती हैं पुरुष बजाते हैं और गाते हैं। कोलदहकी गीतों में श्रृंगारिक सवाल जवाब होते हैं, महिलाएं सवाली गीत गाकर झूम कर नाचती हैं और पुरुष झूमकर बजाते हैं। एक साथ चार या पांच ढोलकें बजती हैं, गीत गाते समय जोर–जोर से हुंकार लगाई जाती है। कोलदहकी नृत्य पंक्ति का नृत्य है, एक पंक्ति महिलाओं की और उन्हीं के समानांतर दूसरी पंक्ति पुरुषों की होती है।

7. **दादर नृत्यः** लोक नृत्य की परंपरा में 'दादर नृत्य' भी बघेलखंड का एक बहु प्रचलित लोक नृत्य है। इस नृत्य का प्रचलन यहां रहने वाली बारी, कोल, कोटवार, हरिजन एवं कहार जातियों में विशेष रूप से पाया जाता है। इन जातियों में 'दादर' निकालने की प्रथा है यह एक सांस्कृतिक रीति रिवाज है जो शादी विवाह के अवसर पर बारात आगमन के समय घराती एवं बराती दोनों की ओर से मिलकर संपन्न होता है। गाजे–बाजे धूमधाम एवं हर्षोल्लास के साथ एक बड़े थाली या परात में प्रथानुसार निर्धारित सामग्री रखकर, नाचते हुए दादर निकाली जाती है। संबंधित जाति के नाम से ही 'दादर' का नाम होता है, जैसे बरिहाई दादर, चमरहाई दादर, केहराई दादर, कोलहाई दादर आदि। यह संबंधित जाति का एक प्रतिष्ठात्मक अनुष्ठान होता है, जो सम्मानजनक कहलाता है। यदि कोई बाराती या घराती दादर की कोताही करता है तो यह सामाजिक अपमान का प्रतीक माना जाता है। 'दादर' निकालने की इसी बेला में कभी–कभी पुरुष स्त्री के वेश में नृत्य करता है। सामान्यतया 'दादर' नृत्य में स्त्री–पुरुष दोनों सम्मिलित होते हैं किंतु अधिकतर महिलाएं लंबा धूंघट निकाल कर, हाथ पैर एवं कमर की लचीली सुंदर एवं आकर्षक मुद्रा में दादर नृत्य करती हैं। महिलाएं जब नाचती हैं तो पुरुष सुहावने गीत गाते हैं जो श्रृंगारिक भी होते हैं। महिलाओं के पैरों में बंधी घुंघरू नृत्य का समा बांधती है, इससे दूर दूर से लोग चले जाते हैं, बीच–बीच में पुरुष भी नृत्य करने लगते हैं। दादर की वेशभूषा वही वैवाहिक अवसरों के अनुसार रंग–बिरंगे वस्त्र होते हैं। नगरिया, ढोलक एवं शहनाई इस नृत्य के प्रमुख लोक वाद्य हैं। इस प्रकार लोकनृत्य सबके लिए एवं सब लोक नृत्य के लिए। इस सिद्धांत के अंतर्गत लोक नृत्य की परंपरा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती है।

बघेली लोकगीत

शास्त्रीय विधि–विधान से हटकर मानव एवं अपने आनंद की तरंग में छंदोबद्ध वाणी सहज ही अभिव्यक्ति करती है तो वही लोकगीत है जो यहां के जनजातीय लोकजीवन में स्पष्ट दिखाई देता है। लोकगीतों में मानव मन की मौलिक अभिव्यक्ति है, साथ ही वह युग–युग में बदलती बोलियों को भी मुखरित करता है। उसकी अनंतता सदैव अक्षुण्य सी रहती है। यहां के लोकगीतों में माटी की स्वाभाविक सुगंध है, लोक–गीत केवल गांव के ही गीत नहीं अपितु जन–जन के गीत हैं जिन्हें मानव विभिन्न अवसरों पर तन्मयता के साथ गाता है। इन लोक गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि प्रायः लोकगीतों के श्रोता नहीं होते, गाते समय उपस्थित समस्त महिलाएं कंठ से कंठ मिलाकर गाती हैं और जब से गीत गाने बैठ जाती हैं तो लोकगीतों का विपुल खजाना समाप्त होने का नाम ही नहीं लेता। संस्कार गीतों पर तो महिला वर्ग का एकाधिकार है, ऋतु गीतों पर स्त्री पुरुषों का लगभग समान अधिकार है। लोकगीतों को उनके प्रयोग के आधार पर इस प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं:

1. संस्कार परख लोकगीत 2. धार्मिक लोकगीत 3. मनोरंजन के लोकगीत 4. उद्यम परख लोकगीत
5. ऋतु पर्व के लोकगीत 6. जाति गीत 7. समसामयिक लोकगीत

आदिवासियों के लोकगीत भी अलग तरह के ही होते हैं। टोने–टोटके के गीत एक अलग ही धारा बहाते हैं। जैसेः

घिर अउती रे, कारी बदरिया रे घिर आउती,
अउ बरसन बाले मेघ, टूट न परती रे बइरी पर।
मोर सइला पियासों जाय।।

यहां क्षेत्रीय बोली–बानी के अनुसार लोकगीतों की अत्यंत समृद्ध, विस्तृत और मजबूत परंपरा देखी जा सकती है। भिन्न–भिन्न अवसरों, रोजमर्रा के क्रिया कलापों, भिन्न–भिन्न भावों की अभिव्यक्ति के लिए, गाए जाने वाले इन लोकगीतों की विस्तृत और समृद्ध परंपरा की जड़ लोकमानस में गहरे तक धँसी हुई है। इन्ही लोकगीतों के बहाने लोक समाज की स्त्री–मन के विविध भावोच्छ्वास अपनी संपूर्ण तरलता और उद्दाम वेदना के साथ प्रकट हुए हैं।

बघेली लोक कलाएं

1. **आभूषण कलाः** बघेलखण्ड में पायी जाने वाली आभूषण यहां की प्राचीन संस्कृति की परिचायक हैं, यहां के आभूषणों में कई प्रकार की कला कृतियां देखी जा सकती हैं। बघेलखण्ड में प्राचीन काल से लाख के गहने बनाए जाते रहे हैं। लाख की कंठी, कठुला, तर्की, कंगन, चूड़ी आदि यहां प्रसिद्ध रहे हैं। यहां के प्रमुख आभूषणों को निम्न नामों से जाना जाता है।

माथे से लेकर सिर के ऊपर तक– खोसबा, दामिनी, टीका

कान के आभूषण – ढरकुलिया, झुमका, उतन्ना, झाला, बाला, टाप्स, बिजली, कनछड़ी

नाक के आभूषण – नथ, बेसर, झूलनी, कतरी, फुलिया, बारी

गले के आभूषण – सूतवा, सिक्का, सितिया, पनमा, चौकी कण्ठा, कठुली, मोहर, हेवाल, कटवा, गुलूबंद, बिचहुंली, सीतारामी हार, नेकलेस, मंगलसूत्र, चैन

हाथ के कोहनी के ऊपर – बाजूबंद, बिजाएट, बहुंटा, बजुल्ला

हाथ की कलाई के आभूषण – चुरवा, दोहरी, छन्नी, पाटा, मुर्रा, बनबरिया, पटेलवा, ककना, पहुंची, किन्दनिया, एकदनिया, छलबल, कंगन चूड़ी

अंगुली के आभूषण – मुंदरी, अंगूठी, खगा

कमर के आभूषण– सकरी, सतलड़ी, करधनी, मछरी

पैर के आभूषण –चुरवा, गोड़हरा, छड़ा, पटरी, पईरी, क्षांक्षरा, झांझरा घूंघुर, पाटा, पलामी, अंउठा, मुंदरी, ठेलिया, बिछिया, पायल

वर्तमान समय में झालर, झुमका, हंसुली, बहुटा, गोड़हरा आदि आभूषणों का स्वरूप बदल गया है। गन मैटल और बेनटेक्स के गहने भी प्रचलित हैं।

2. **चित्रकलाः** बघेलखण्ड की चित्रकला का इतिहास अति प्राचीन है। प्राचीन चित्रकला खंडहर हो रहे ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्व के स्थलों, भवनों, गुफाओं आदि में आज भी विद्यमान है। ऐतिहासिक स्थलों की खुदाई के दौरान कुछ इस तरह के पत्थर और पक्की मिट्टी के बर्तनों के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिनमें महाभारत कालीन चित्रकारी की कला परिलक्षित होती है। कुछ पक्की मिट्टी के बर्तनों के टुकड़ों में सुनहरे रंग की चित्रकारी जिसमें मोर का चित्र अंकित है, कुन्ताहलपुर के खंडहरों में प्राप्त हुए हैं। पंखों में चमकीले नीले रंग का प्रयोग किया गया है। सूर्य की रोशनी में बर्तन के इन टुकड़ों में सोने जैसी चमक दिखाई पड़ती है। विराटनगर, सोहागपुर के खंडहरों माड़ा, सिलहरा एवं गिजंवा पहाड़ी की गुफाओं की चित्रकला अत्यंत प्राचीन काल की है। इसमें विद्यमान भित्ति चित्रों

में बसंती रंग से युक्त फूल पत्तियों, बेलों, चिड़ियों, जंगली जानवरों, शिकारियों आदि को चित्रित किया गया है।

3. **हस्तशिल्प कलाः** बघेलखण्ड में उम्दा हस्तशिल्प देखी जा सकती है, यहां के हस्तशिल्पियों ने पत्थर पर चित्रकारी का अद्‌भुत नमूना तो प्रस्तुत ही किया है, साथ ही लकड़ी की मूर्तियों एवं खिलौना बनाना भी इनका शौक और पेशा रहा है। बघेलखण्ड में जनजातीय क्षेत्रों में बांस के दैनिक उपयोग की वस्तुओं के साथ–साथ खिलौने तथा कलाकृतियों को बनाने की कला भी उत्कृष्ट है। मिट्टी को तराश कर खिलौने बनाने का कार्य भी होता है। सीधी जिले के भरतपुर की दस्तकारी विदेशों में भी लोकप्रिय हो रही है। भरतपुर के कारीगरों द्वारा तैयार किए कपड़ों में कुर्ता का कपड़ा बहुत प्रसिद्ध है। भरतपुर में सैकड़ों परिवार कच्चे सूत के जरिए हथकरघा से कपड़ा तैयार करते हैं।

बघेली जनउहल (लोकोक्तियां)

बघेली लोक साहित्य में पहेलियों को जनउहल अथवा बुझउहल या किहिनी कहा जाता है जो कि परंपराओं से चली आ रही है। बघेली जनउहल सामान्य ज्ञान की कसौटी है, इससे बुद्धि परीक्षण, तार्किक शक्ति का विकास, बौद्धिक ज्ञान की प्राप्ति तथा खोजी प्रकृति का उन्नयन होता है। इस तरह जनउहल मानव ज्ञान का कोर्स यदि नहीं है तो बौद्धिक विकास की व्यायामशाला अवश्य है। कुछ जनउहल कवितानुमा शैली में छंदों के सांचे में ढले हुए हैं, तो कुछ हास परिहास के रसों में डूबे हुए हैं। इन्हें गुणधर्म और स्वरूपों के आधार पर ही पहचाना जा सकता है, कुछ जनउहल लोक मर्यादा, लोक संस्कृति, आदिम सभ्यता और रूढ़ियों, परंपराओं, तकनीकी ज्ञान आदि पर केंद्रित हैं। सारांशतः बघेली जनउहल का एक विस्तृत लोक है।

उदाहरणः 1. धम्मक धारी गोड़ पसारी, ताक ताक के बिल्लक धारी (कांड़ी मूसर)

2. टेढ़ी मेढ़ी लकड़ी पहार चढ़ी जाय (धुआं)

बघेलखंड के घर–आंगन की बोली बघेली कही जाती है, जो रीवा, सतना, सीधी, सिंगरौली शहडोल, अनूपपुर, और उमरिया जिले में बोली जाती है। इस अंचल में बहुचर्चित बघेली लोकोक्तियों का एक विशाल वैभव है। यह लोक मानस की सहज उक्तियां ही नहीं बल्कि अनुभूतियों से प्रस्फुटित सूत्र हैं। दैनिक बोलचाल की भाषा में लोकोक्तियों को 'उक्खान' कहा जाता है। लोकोक्तियों का 'लोकजीवन' से गहरा संबंध होता है। कुछ लोकोक्तियां रीति–रिवाज एवं रूढ़िवादिता पर केंद्रित हैं, तो कुछ आंचलिक साहित्य, संस्कृति एवं परंपरागत 'लोक साहित्य' पर आधारित हैं। जो खेती संबंधी, जाति या वर्ग संबंधी, धर्म एवं संप्रदाय संबंधी, सामाजिक कुरीतियों तथा रूढ़ियों संबंधी, नीति सूक्त विषयक, आस्था और विश्वास संबंधी, तथा विकास एवं आलोचना संबंधित यात्राएं पूर्ण करती हैं।

निष्कर्ष

बघेलखण्ड में सुविधाविहीन लोकजन ने अपने संस्कारों, रिवाजों, परंपराओं एवं संस्कृति को लोकगीतों, लोककथाओं एवं लोकनाटकों के माध्यम से सुरक्षित रखने का प्रयास किया। बघेलखण्ड में बघेली लोकभाषा पायी जाती है, यहां हिंदी लिखित रूप में उपयोग में लाई जाती है, लेकिन मौखिक रूप से बघेली बोली ही बोली जाती है। हिंदी की अपेक्षा लिखित रूप में बघेली साहित्य की उपलब्धता कम है। बघेलखण्ड का जनजातीय लोक जीवन गीत, कहानियों और पहेलियों के रूप में प्रत्येक समाज में विद्यमान है। इसके अलावा लोक नृत्य, लोक नाट्य, भूमि भित्त चित्र, अंग चित्र भी परंपरा के मुताबिक बनाए जाते हैं। बघेलखंड में लोक नृत्य समूह में नाचे जाते हैं, लोक नृत्यों की गति और रचना सादी सरल और स्वाभाविक होती है, ताले सरल होती हैं जिन्हें सीखने में कठिनाई नहीं होती है, नाचते हुए समूह को देखकर लोगों के मन में अपने आप ही नाचने की इच्छा पैदा होती है। बघेली ग्रामीण अंचलों में लोक नृत्य अब भी देखे जा सकते हैं जो कि जनजातियों के मनोरंजन के प्रमुख साधन हैं। प्रायः सभी जनजातीय समाज में उनकी अपनी लोक संस्कृति के अनुरूप लोक नृत्य हैं। बघेलखंड की प्राचीन कला और संस्कृति की झलक हमें यहां के लोकगीतों में परिलक्षित होती है। क्षेत्र में लगभग 88 प्रकार के लोकगीत विभिन्न संस्कारों के समय गाए जाते हैं। बघेली लोकोक्तियों में अभिव्यक्त भावनाओं और अनुभूतियों में विविधता है इनका एक विस्तृत संसार है। आज के भौतिक, वैज्ञानिक एवं मशीनी युग में मानव बनावटी जीवन के कारण लोक परंपराओं से दूर होता जा रहा है और अनेक तनाव का शिकार बनता जा रहा है।

संदर्भ सूची

पुस्तक

1. कुमार प्रमिला, (1997), *मध्यप्रदेश का भौगोलिक अध्ययन,* भोपालः मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
2. शुक्ल भगवती प्रसाद, (1971), *बघेली भाषा और साहित्य,* इलाहाबादः साहित्य भवन प्रा.लि.।
3. अखिलेश एस., (2012), *रीवा दर्शनः बघेलखण्ड का सामाजिक–सांस्कृतिक इतिहास,* रीवाः गायत्री पब्लिकेशन्स।
4. मिश्र मुकुन्द प्रसाद, (2002), *रीवा जिले की पत्रकारिता का इतिहास,* रीवाः आचार्य आफसेट प्रिंटर्स।
5. शर्मा रामविलास, (1955), *लोकजीवन और साहित्य,* आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर, हास्पिटल रोड।
6. सोनवणे शशिकांत, (2008), *लोक साहित्य,* कानपुर : अभय प्रकाशन, प्रथम संस्करण।
7. शर्मा ब्रह्मादेव, (1994), *आदिवासी विकास,* भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल।
8. शर्मा एवं उपाध्याय, (2004), *भारत में जनजातीय संस्कृति,* भोपालः मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
9. सिन्हा आर.के., (1983), *पण्डो जनजाति,* भोपालः मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
10. त्रिपाठी आर्या प्रसाद, (2011), *बघेली साहित्य का इतिहास,* भोपालः साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद।
11. दाहिया बाबूलाल, (2022), *मैं और मेरा गांव,* सतनाः शब्द शिल्पी प्रकाशन।
12. विकल गोमती प्रसाद, (1999), *बघेली संस्कृति और साहित्य,* भोपालःराजभाषा एवं संस्कृति संचालनालय, मध्यप्रदेश।
13. सिंह जीतन, *रीवा राज्य दपर्ण.* पृष्ठ 7।
14. अली रहमान, तवारीख–ए–बघेलखण्ड. पृष्ठ 68–89।

शोध आलेख

15. दुबे पुष्पा, (सितंबर 2015), बघेलखण्ड राज्य का ऐतिहासिक अध्ययन, *Indian Streams Research Journal*, ISSN 2230-7850 Volume 5, Issue 8.
16. शांति जी., (जनवरी–जून 2019), लोक साहित्य और मानव समाज, *मीडिया विमर्श*।
17. देवी अर्चना, (1961–62), *विंध्यतंत्रः* ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा की पत्रिका।

वेबसाइट

18. http://ignca.gov.in/coilnet/madhya01.html
19. http://www.hindisamay.com/content/9152/1
20. https://www.patrika.com/bhopal-news/the-baghelkhand-folk-art-in-crisis-1115371/
21. https://www.tribal.mp.gov.in/CMS/

****